Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

वैशेषिक दर्शन में समवाय और उसके विषय में श्रीवल्लभाचार्य का दृष्टिकोण

डॉ0उधम मौर्य
(भूतपूर्व शोधछात्र)
दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी,उत्तर प्रदेश,भारत।

सारांशा : समवाय संयोग के समान ही एक सम्बन्ध है। क्योंकि यह भी विशोष्यविशोषण भाव का नियामक है। मर्हिष कणाद का मत है कि कारण और कार्य में जो सम्बन्ध है, वही समवाय है। आचार्य श्रीवल्लभ का मत है कि जो विशिाष्ट व्यवहार भावमात्रविषयक होता है तथा अबाधित होता है, वह सम्बन्ध–नियत होता है। गोत्व जाति का समवाय सम्बन्ध रहने ही पिण्ड विशोष को गो शब्द से व्यहृत करते हैं। गोत्व का यह वैशिाष्ट्य ही समवाय की नियमन सत् के द्वारा गो, व्यक्तियों में गोत्व के अवभास को उत्पन्न करता हैं। तात्पर्य यह है कि समवाय यद्यपि एक है फिर भी अपने विशोष में ही विशोष समय में रहने के स्वभाव के कारण जिस समय जहाँ गोत्व की सत्ता रहती है, वही गौः इस प्रतीति को उत्पन्न करता है अर्थात् जहाँ जिस अधिकरण में गोत्व का अत्यन्ताभाव है वहाँ ''अयं गौः'' इस प्रकार की प्रतीति को वह उत्पन्न नहीं करता। समवाय में जो अधिकरण विशोष में, समय विशोष गोत्व को अवभासित करने की शक्ति है, वही समवाय की गोत्व व्यंजिका शक्ति है।

मुख्य शब्द : द्विपृथकत्व, विशोषणता और विशोष्यता, 'स्वात्मगतसंवेदनाभावाच्च', आश्रयीभूत।

भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में वैशेषिक दर्शन का स्थान अन्यतम है। यह सात पदार्थों को मानता है। इस दर्शन का आरम्भ 'धर्म' व्याख्या की प्रतिज्ञा से हुआ है। सभी प्रकार के ऐहिक और पारलौकिक इष्टों और मोक्ष के साधन को ही इस दर्शन में धर्म कहा गया है। यह धर्म (1) प्रवृत्तिलक्षण और (2) निवृत्तिलक्षण से दो प्रकार का है। प्रवृत्तिलक्षण धर्म से ऐहिक तथा पारलौकिक स्वर्गादि सुखों की प्राप्ति होती है एवं निवृतिलक्षण रूप 'विशेष' धर्म के द्वारा (1) द्रव्य (2) गुण (3) कर्म (4) सामान्य (5) विशेष (6) समवाय और (7) अभाव। इन सात पदार्थों का साधर्म्य और वैध रूप से तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है, उसी से मुक्ति होती है। यद्यपि 'आत्मा वारे श्रोतव्यः तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति' इत्यादि श्रुतियों के द्वारा आत्म तत्त्व ज्ञान को ही मोक्ष का कारण माना गया है, किन्तु आत्मा को अच्छी तरह से समझने के लिए भी संसार के और सभी पदार्थों को समझना आवश्यक है। संसार की प्रत्येक वस्तु अन्य सभी वस्तुओं के साथ किसी न किसी प्रकार सादृश्य या आसादृश्य से युक्त है, अतः परस्पर सम्बद्ध है। अतः एक

वस्तु को समझने के लिए और सभी वस्तुओं को समझना आवश्यक है। अतः महर्षि कणाद ने समझने की सुविधा के लिए जगत् को द्रव्यादि सात भागों में विभक्त किया है।

आचार्य श्रीवल्लभ न्याय–वैशेषिक के 12वीं शताब्दी के विद्वान है, जिन्होंने न्यायलीलावती नामक ग्रंथ की रचना की है। न्यायलीलावती में अन्य दार्शनिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए, आचार्य श्रीवल्लभ ने न्याय–वैशेषिक के सिद्धान्तों का अपने तार्किक युक्तियों के द्वारा प्रतिपादित किया है। जैसे द्रव्यादि प्रक्रिया के परिच्छेद में सिंहावलोकन न्याय से द्वयणुकसिद्धि में आने वाले आक्षेपों के समाधानपरक युक्तियों तथा पिठरपाक पर आक्षेप करने वाली युक्तियों का प्रदर्शन करते हुए पाकज प्रक्रिया का वर्णन , द्विपृथकत्व की सिद्धि के लिए पृथकत्व प्रक्रिया का तथा संयोग, विभागादि के परीक्षण के लिए पुनः संयोग से लेकर संस्कार तक की प्रक्रिया का प्रदर्शन करना, आचार्य श्रीवल्लभ का वैशिष्ट्य है। इसी प्रकार समवाय परीक्षा में विशेषणता और विशेष्यता का स्थल विशेष में अन्तर्भाव होने से स्वरूप भेद का कथन करते हुए वैशेषिक दर्शन में समवाय को अप्रत्यक्ष स्वीकार करने पर भी समान तन्त्र षोडश–पदार्थवादी न्याय मत का आश्रय लेकर महान् आडम्बर के साथ विभाग परिच्छेद में जो समवाय का प्रत्यक्षत्व सिद्ध किया गया है, वह न्यायलीलावती का अत्यन्त उपादेय तथा वैदग्धविधायक भाग विशेष है।

समवाय वैशेषिक दर्शन का छठा पदार्थ है। संयोग की तरह समवाय सम्बन्ध रूप है, क्योंकि यह भी विशेष्यविशेषण भाव का नियामक है। संयोग सम्बन्ध से समवाय सम्बन्ध में अन्तर यह है कि यह अपने आधार और आधेय इन दोनों में से एक के विनष्ट होने तक बना रहता है जबकि संयोग में ऐसा नहीं है। महर्षि कणाद समवाय को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'यहाँ यह है इस प्रकार कार्य और कारण में जो सम्बन्ध है, वही समवाय सम्बन्ध है'।[1] शंकर मिश्र का मत है कि समवाय एक है क्योंकि समवाय के अनेकत्व का साधक कोई लिंग ही नहीं है।[2] आचार्य प्रशस्तपाद का मत है कि 'दो अयुतसिद्धों का, जिसमें एक आश्रय एवं दूसरा आश्रित हो, जो सम्बन्ध यह (आश्रित) यहाँ (आश्रय) में है' इस प्रकार के प्रत्यक्ष का कारण हो, वही सम्बन्ध समवाय है।[3] समवाय की सत्ता को प्रमाणित करने आचार्य प्रशस्तपाद यह युक्ति देते हैं कि ''इस कुण्ड में दधि है'' यह प्रतीति दक्षि और कुण्ड में संयोग सम्बन्ध होने पर ही होती है, उसी प्रकार ''इन तन्तुओं में पट है'', ''इस द्रव्य में गुण व कर्म है'' इत्यादि प्रतीतियों के सिवाय इन आधार और आधेयों में भी कोई सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए और वही सम्बन्ध समवाय है। संयोग की तरह यह समवाय अनेक भी नहीं है क्योंकि जिस प्रकार द्रव्य, गुण और कर्म सभी में 'यह सत् है' इस सामान्य आकार की प्रतीति होती है और इसलिए द्रव्य, गुण और कर्म तीनों में रहने वाला सत्ता नाम का सामान्य एक ही है, उसी प्रकार द्रव्यादि अपने अनुयोगियों में अपने प्रतियागियों का 'यह यहाँ है' इस एक प्रकार की प्रतीति का कारण होने से समवाय भी एक है। समवाय में अवान्तर भेद का ज्ञापक कोई प्रमाण भी उपलब्ध नहीं होता है। अतः अपने सभी अनुयोगियों में रहने वाला समवाय एक ही है।[4] सम्बन्धियों के अनित्य होने पर भी संयोग की तरह समवाय अनित्य नहीं है क्योंकि सत्ता जाति की तरह वह भी अकारण है।[5]

समवाय को अतीन्द्रिय सिद्ध करते हुए आचार्य प्रशस्तपाद कहते हैं कि प्रत्यक्ष होने वाले घटादि पदार्थों में सत्ता आदि सामान्यों की जिस प्रकार स्वभिन्न समवाय नाम की वृत्ति है, ऐसी समवाय में नहीं है। दूसरी बात , संयोगादि की तरह अनुयोगी और प्रतियोगी से भिन्न ''यह नहीं है'' इस प्रकार की बुद्धि से समवाय का अनुमान होता है।[6] न्यायकन्दलीकार कहते हैं कि इसी को स्पष्ट करने के लिए भाष्यकार ने 'स्वात्मगतसंवेदनाभावाच्च' यह पद दिया है। अर्थात् जिस प्रकार इन्द्रियों से संयोग का ग्रहण होता है, उसी प्रकार इन्द्रियों से समवाय का ग्रहण नहीं होता है क्योंकि दोनों सम्बन्धियों की उपलब्धि ऐक्यबद्ध होकर होती है। तात्पर्य यह है कि सम्बन्ध के प्रत्यक्ष के लिए दोनों सम्बन्धियों का स्वतन्त्र रूप से प्रत्यक्ष होना आवश्यक है किन्तु समवाय की सत्त्वदशा में उसके सम्बन्धियों की पृथक् रूप से उपलब्धि नहीं होती है। अतः समवाय अतीन्द्रिय है और इसलिए वह ''इह बुद्धि'' से अनुमेत भी है।[7]

श्रीवल्लभाचार्य का समवाय विषयक मत : समवाय पदार्थ के प्रसंग में अनुमान प्रस्तुत करते हुए न्यायलीलावतीकार श्रीवल्लभ कहते हैं कि जो विशिष्ट व्यवहार भावमात्रविषयक होता है तथा अबाधित होता है, वह सम्बन्ध–नियत होता है अर्थात् ''सघटं भूतलम'' इस प्रकार का विशिष्ट व्यवहार। उसी प्रकार ''इह गवि गोत्वम्'' इत्यादि जात्यादि गोचर व्यवहार भी चूँकि भावमात्र विषयक है एवं उनका कोई बाधक ज्ञान भी नहीं है। अतः इनमें भी नियमतः विशेष्य और विशेषण का सम्बन्ध अवश्य भाषित होता है।[8] किन्तु ''सघटं भूतलम'' इत्यादि व्यवहारों में भाषित होने वाला संयोग सम्बन्ध का भान चूँकि ''इह गवि गोत्वम्'' इत्यादि जात्यादि गोचर विशिष्ट व्यवहारों में बाधित है, अतः उन विशिष्ट व्यवहारों में भाषित होने वाले सम्बन्ध का पर्यवसान समवाय में होता है।

''गोत्वसम्बन्धी'' स्थलों के समान ''जातिवद्द्रव्यम्'' ''गुणवद्द्रव्यम्'' ''क्रियावद्द्रव्यम्'' इत्यादि विशिष्ट प्रतियोगियों में संयोग का आरोप नहीं माना सकता क्योंकि (1) संयोग चूँकि दो द्रव्यों में होता है, किसी एक के भी अद्रव्य होने से संयोग नहीं होता, इसलिए जाति और द्रव्य में संयोग का आरोप संभव नहीं है। (2) संयोग सम्बन्ध युतसिद्धों में ही होता है। जाति और जातिमत् दोनों युत–सिद्ध नहीं है किन्तु अयुतसिद्ध है। अतः इन दोनों में संयोग सम्बन्ध नहीं हो सकता। अतः ''जातिवद्द्रव्यम्'' इत्यादि प्रतीतियों में संयोग का आरोप नहीं स्वीकार किया जा सकता।[9]

यदि जातिवद्द्रव्यम् इत्यादि स्थलों में समवाय का ही आरोप होता है तो आरोप के लिए तो आरोप्य का धर्मी का रहना आवश्यक नहीं है। अतः यह आपत्ति दी जा सकती है कि घट में गोत्व के समवाय का आरोप नहीं होता? सिद्धान्ती श्रीवल्लभ इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि आरोप की उत्पादिका एक प्रकार की विचित्र शक्ति होती है। शक्ति की इसी विचित्रता से ही समवाय के नियमित द्रव्यादि सम्बन्धी में समवाय का आरोप होता है, सर्वत्र नहीं। जैसे कि अपने शरीर में ही आत्मा का आरोप होता है, वृक्षादि में नहीं। अथवा एक ही चन्द्रमा का द्वित्व का आरोप होता है।[10] यहाँ यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार ''गौरयम्'' इस स्थल में गोत्व और पुरिवर्तित्व दोनों के एक

ही अधिकरण गो पदार्थ में अनुभव से गो और इदम् पदार्थ स्वरूप गो इन दोनों में, इनसे भिन्न समवाय नामक एक सम्बन्ध की कल्पना होती है,[11] उसी प्रकार ''ज्ञातोऽयं घटं'' इस सामानाधिकरण्य की प्रतीति से ज्ञान और अथ। इन दोनों के स्वरूप से भिन्न एक सम्बन्ध की कल्पना की जा सकती है।[12] इस आक्षेप का उत्तर देते हुए आचार्य श्रीवल्लभ कहते हैं कि ज्ञान में भाषित होने वाले अर्थ अतीत, अनागत और वर्तमान भेद से तीन प्रकार के है, उनमें से पहले दो प्रकार के अर्थों के साथ ज्ञान सम्बन्ध सम्भव ही नहीं है क्योंकि अविद्यमान वस्तुओं के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता है। अतः वर्तमान वस्तुओं के साथ ज्ञान का सम्बन्ध सम्भव होने पर भी अविद्यमान वस्तुओं के ज्ञान सम्बन्धी न्याय से यह निष्कर्ष निकलता है कि ज्ञान का विषय के साथ स्वरूप के अतिरिक्त कोई अन्य सम्बन्ध नहीं है।

आचार्य श्रीवल्लभ वैशेषिक के समवाय के अनुमान सम्बन्धी विचार की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि जात्यादि अपने आश्रयीभूत द्रव्यादि के साथ सम्बद्ध है, एवं स्वाश्रयीभूत द्रव्यादि भिन्न सामान्यादि के साथ सम्बद्ध नहीं है, इस अनुभव के बल पर विशेषण और विशेष्य इन दोनों से भिन्न बोध के लिए किसी अन्य सहायक की अपेक्षा करते हैं, वह सहायक ही समवाय है।[13] अन्यथा अर्थात् गोत्व जाति के आश्रयीभूत गो के साथ गोत्व जाति का कोई विशेष सम्बन्ध न माने तो गो में जो ''अयं गौः'' इस प्रकार की प्रतीति होती है एवं महिषादि में उससे भिन्न ''अय मगौः'' इस आकार की प्रतीति है, वह नहीं हो सकेगी क्योंकि गो और महिषादि में गोत्व का असम्बन्ध बराबर है। फलतः या तो गौ महिषादि साधारण सर्वत्र ''अयं गौः'' इसी प्रकार की प्रतीति होगी। प्रतीति की विचित्रता के कारण ही जात्यादि गोचर विशिष्ट बुद्धि में विशेष्य–विशेषण भाव ले, अतिरिक्त समवाय सम्बन्ध की अपेक्षा अवश्य होती है।[14] जाति और जातिभान् द्रव्य और गुण, क्रिया एवं क्रियावान इत्यादि स्थलों में जो समवाय का भान होता है, उसके लिए विशेष्य–विशेषणभाव नामक स्वरूप सम्बन्ध को छोड़कर किसी अन्य सम्बन्ध का भान नहीं होता है। अतः अनवस्थारूप तर्क के भय से स्वरूप सम्बन्ध से ही समवाय विषयक प्रतीति की उपपत्ति हो जायेगी।

निष्कर्ष रूप में आचार्य श्रीवल्लभ समवाय सम्बन्ध के विषय में कहते हैं कि गोत्व जाति का समवाय सम्बन्ध रहने ही पिण्ड विशेष को गो शब्द से व्यहृत करते हैं। गोत्व का यह वैशिष्ट्य ही समवाय की नियमन सत् के द्वारा गो, व्यक्तियों में गोत्व के अवभास को उत्पन्न करता हैं। तात्पर्य यह है कि समवाय यद्यपि एक है फिर भी अपने विशेष में ही विशेष समय में रहने के स्वभाव के कारण जिस समय जहाँ गोत्व की सत्ता रहती है, वही गौः इस प्रतीति को उत्पन्न करता है अर्थात् जहाँ जिस अधिकरण में गोत्व का अत्यन्ताभाव है वहाँ ''अयं गौः'' इस प्रकार की प्रतीति को वह उत्पन्न नहीं करता। समवाय में जो अधिकरण विशेष में, समय विशेष गोत्व को अवभासित करने की शक्ति है, वही समवाय की गोत्व व्यंजिका शक्ति है। यही गोत्व व्यंजिका शक्ति गो विषयक विभिन्न प्रत्ययों में एक धर्माधिष्ठानत्व एकाकारत्व रूप से अनुभूत होता है। अतः विभिन्न गो व्यक्तियों में एक समवाय के द्वारा ''अयं गौः'' इस प्रकार की प्रतीति उत्पन्न होती है।

संदर्भ–

1. इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः। वैशेषिकसूत्र 7/2/26
2. 7/2/26 पर शंकर मिश्र का उपस्कार
3. अयुतसिद्धनामाधार्याधारभूतानां यःसम्बन्धः इह प्रत्यक्ष हेतुः स समवायः। प्र0भाष्य पृ0 773
4. वही– 777
5. सम्बन्ध्यनित्यत्वेऽपि न संयोगवदनित्यत्वं भाववदकारणत्वात्। वही– पृष्ठ 782
6. वही– 784–785
7. न्यायकन्दली, वाराणसी 1997, पृ0 784–785
8. न्यायकन्दली, पृ0 708–10
9. वही– पृ0 719
10. वही पृ0 719–20
11. संसृष्टासंसृष्टत्वजिज्ञासायां सत्यां भेदारोप एव सम्बद्धत्वारोपः। वही– पृ 720
12. ज्ञातोऽयं घट इत्यत्रापि सामानाधिकरण्यबोधवलेन सम्बन्धप्रसक्तिरिति चेत्। वही– पृ0720
13. वही– पृ0 721
14. अन्यथा विचित्रप्रत्ययानुपपत्तेः। न्यायलीलावती– पृ 721–22